आतस दुनिआ खुनक नामु खुदाइआ ।।
कलि ताती ठांढा हरि नाउ ।।

भाग — 6

यदि हमारे कपड़ो को आग लग जाये, तो हम अपनी आग बुझाने में असहाय (helpless) होते हैं। हम घबराकर जितना भी इधर-उधर भागते हैं — उतना ही हवा से आग बढ़ती जाती है। कोई दूसरा व्यक्ति ही हमारी आग बुझाने के लिए प्रयास या प्रयत्न कर सकता है।

इसी प्रकार हमारी **भीतरी गुप्त मानसिक अग्नि** को हम अपने आप बुझाने में असमर्थ हैं। इसी कारण हम इस गुप्त अग्नि में कई जन्मों तथा युगों से जलते-भुनते-सड़ते आये हैं।

पहले तो हमें यह सूझ ही नहीं तथा न ही हम मानने को तैयार हैं, कि हमारे अन्दर भी कोई आग लगी हुई है! इसी कारण हम अपनी भीतरी अग्नि से **बेखबर,** बेपरवाह तथा मस्त हुए रहते हैं। यदि किसी गुरमुख जन द्वारा या गुरबाणी द्वारा हमें सूझ भी आ जाये, तब हम जो भी उपाय करते हैं— उसकी **'तह' में 'अहम्' का अंश या रंगत ही होती है,** जिस से हमारी 'आग'— **कम होने की अपेक्षा और बढ़ती जाती है!!**

जब हमारे कपड़ों को आग लग जाये, तब हम हाहाकार कर उठते हैं तथा सहायता के लिए पुकारते हैं।

इस प्रकार यदि हमें **निश्चय हो जाये कि हमें यह गुप्त अग्नि लगी हुई है,** तब गुरबाणी हमें साध-संगत की शरण में दौड़ कर जाने की सीख देती है। परन्तु उन्हीं गुरमुख जनों की संगति की सिफारिश है, जिन्हें

यह आग नहीं लगी। या जिनके पास नाम की 'शीतलता' है !! वही हमें इस गुप्त अग्नि से बचाने में समर्थ हैं। जो स्वयं ही इस गुप्त अग्नि से जल रहे हैं, वह हमारी भीतरी अग्नि को कैसे बुझा सकते हैं, अपितु **बढ़ा देंगे।**

पड़ोसियों के घर 'आग' लगी हो, तब हम अपने घर को आग से बचाने का उद्यम करते हैं — परन्तु जब **सारा संसार ही —**

'आतिश दुनिया'
'अग्नि कुंड'
'अग्नि-शोक-सागर'
'कलि ताती'

अनुसार प्रचंड अग्नि रूप बना हुआ है, तब हम अपने आप को **कैसे बचा सकते हैं ?**

तितु सरवरड़ै भइले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ।। (पृ. 12)

अगनि कुटंब सागर संसार ।।
भरम मोह अगिआन अंधार ।। (पृ. 675)

इसी कारण गुरू बाबे ने हमें इस से बचने के लिए गुरबाणी द्वारा निम्नांकित उपदेश दिये हैं —

जगतु जलंदा देखि कै भजि पए सरणाई ।। (पृ. 424)

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम ।। (पृ. 571)

दीन दइआल क्रिपाल प्रभ नानक साधसंगि मेरी जलनि बुझाई ।।
(पृ. 204)

भइओ क्रिपालु सतसंगि मिलाइआ ।।
बूझी तपति घरहि पिरु पाइआ ।। (पृ. 738)

'साध-संगति' में ही 'मानसिक अग्नि' को बुझाने के लिए 'ठडे हरि नामु' का आदान-प्रदान होता है।

वास्तव में आत्मिक मंडल में, यह 'दिव्य वाणिज्य-व्यापार' या 'आदान-प्रदान' सतिगुरू अपनी मौज में, दोनों तरफ स्वयं ही कर रहे होते हैं।

आपे साजे आपे रंगे आपे नदरि करेइ ।। (पृ. 722)

इस ईश्वरीय मंडल के व्यापार में —

'तोटा मूल न होवई'

'सदा लाभ'

'वधदो जाई'

का व्यवहार है।

इस दिव्य मंडी में 'सत्', 'नाम' की 'इकत हट्' (दुकान) है, तथा यहाँ 'सत्' के 'इक-भांति' के व्यापारी आते हैं, तथा 'हरि नाम' का लाभ ले जाते हैं।

संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा ।।
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगति भरे भंडारा ।।
संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उतरिआ मन का धोखा ।।
(पृ. 614)

वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि ।।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि ।।
अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि ।।
भाई रे रामु कहहु चितु लाइ ।।
हरि जसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ ।। (पृ. 22)

वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु ।। (पृ. 595)

इस आत्मिक मंडल की 'अनूप' तथा सार वस्तुओं का व्यापार, केवल दिव्य व्यापारियों, गुरमुख प्यारों के बीच ही हो सकता है। इस की एक मात्र 'इकत हट्' है, जिसे गुरबाणी में—

साध संगति
संत मंडली
सत संगत

कहा गया है।

'अमृत पान कराना' भी इसी गुप्त दिव्य रास के 'व्यापार', 'आदान-प्रदान' तथा 'खमीर' का ही प्रतीक तथा प्रकटाव है।

यह 'इकत हट्' कहीं बाहरी दृश्यमान देश या द्वीप में नहीं है, अपितु यह तो हमारी अन्तर-आत्मा में —

प्रेम सवैपना
प्रेम भावना
आत्मिक प्यार
प्रीत आकर्षण
श्रद्धा भावना
चुप प्रीत
ईश्वरीय मंडल

में प्रविष्ट है।

दूसरे शब्दों में, जिस 'दिव्य मंडल' में इन ईश्वरीय —

सार वस्तुओं
अनूप वस्तुओं
सच वस्तु
आत्मिक खमीर
भक्ति-भंडार
प्रिम-रस
आत्म-रंग
मजीठ-रंग
तत्-शबद
'नाम-धन'

इलाही रास

प्रिम-प्याला

नाम-खुमारी

आत्मिक चाव

परम पद

आदि का **'वाणिज्य-व्यापार'** तथा **'आदान-प्रदान' हो,** उसे ही **'साध संगत'** या **'सत् संगत'** कहा जा सकता है तथा यह आत्मिक शीतलता का प्रतीक है।

गुरबाणी में ऐसी ही संगत करने की महत्ता तथा प्रेरणा की गयी है—

सतसंगति कैसी जाणीऐ ।।
जिथै एको नामु वखाणीऐ ।। (पृ. 72)

मनु असमझु साधसंगि पतीआना ।। (पृ. 890)

सतसंगति महि नामु निरमोलकु वडै भागि पाइआ जाई ।।
(पृ. 909)

कहु नानक जउ साधसंगु पाइआ ।।
बूझी त्रिसना महा सीतलाइआ ।। (पृ. 913)

मिलि सतसंगति परम पदु पाइआ कढि मारवन के गटकारे ।।
(पृ. 982)

सतसंगति प्रीति साध अति गूड़ी जिउ रंगु मजीठ बहु लागा ।।
(पृ. 985)

साधसंगति कै आसरै प्रभ सिउ रंगु लाए ।। (पृ. 966)

मिलि संगति सरधा ऊपजै गुर सबदी हरि रसु चाखु ।।
(पृ. 997)

जे लोड़हि सदा सुखु भाई ।।
साधू संगति गुरहि बताई ।।
ऊहा जपीऐ केवल नाम ।।
साधू संगति पारगराम ।। (पृ. 1182)

साधसंगति मिलि हरि रसु पाइआ ।।
पारब्रहमु रिद माहि समाइआ ।। (पृ. 1348)

इस प्रेम-स्वैपना वाले दिव्य मंडल में दिमागी थोथे ज्ञान की पहुँच नहीं — क्योंकि हमारी दिमागी उक्तियों, युक्तियों, फिलोस्फियों तथा चतुराईयों के 'पंख', आत्मिक मंडल के इलाही प्रकाश की 'दमक' अथवा 'किरणों' द्वारा 'जल' जाते हैं।

जिस प्रकार पहले बताया जा चुका है कि **वृत्तियों के बाहरमुख होकर दौड़ने के कारण,** इन्सान का मन अत्यन्त निर्बल हो जाता है तथा मायिकी ग्लानि के कारण — इन्सान की निर्णय शक्ति तथा 'जीवन-दिशा' भी मायिकी रंगत वाली हो जाती है।

सही आत्मिक 'मार्ग-दर्शन' न मिलने के कारण इन्सान की —

सोच
ख्याल
निर्णय
इच्छाएँ
कामनाएँ
चयन
फैसले
निश्चय

श्रद्धा

भावनाएँ

गलत हो सकती हैं, तथा हमारे मन को **मायिकी मंडल से ऊपर नहीं ले जा सकती।**

Our so called beliefs and faiths are based on flimsy dogmatic mental ideas and hypothesis, which change from time to time according to outer circumstances, and have NO ROOTS in TRUE ETERNAL changeless FOUNDATION OF DIVINITY.

अकाल पुरुष तथा उसके 'गुर प्रसाद' पर **'विश्वास'** ही, हमारे निश्चय, भरोसे तथा श्रद्धा-भावना की सच्ची, पवित्र, अटल बुनियाद है।

इसके बिना, अन्य **मायिकी दिमागी 'निश्चय'—**

कूड़

थोथे

बे-बुनियाद

जड़-हीन

परिवर्तनशील

हैं, तथा गुप्त मानसिक अग्नि का आधार हैं ।

जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ ।।
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ।। (पृ. 285)

जब हमारी **'निर्णय शक्ति'** ही मायिकी धारणाओं पर आधारित है, तब हमारी दिमागी चतुराईयां या विद्वता, हमें त्रि-गुण मायिकी सीमा से आगे नहीं ले जा सकती तथा आत्मिक मंडल का सही मार्ग-दर्शन करने में असमर्थ हैं।

आत्मिक मंडल का अनुभवी ज्ञान या दिव्य 'झलक', केवल तत्त योग के वेत्ते, बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगति द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इस दिव्य प्रकाश के मंडल में इन्सान के दिमागी —

ज्ञान
विद्वता
विज्ञान
चतुराई
उक्तियों
युक्तियों
फिलोस्फियों
दलीलों

की पहुंच नहीं है।

Our intellectual approach to outer dogmatic religion, can at best, take us to the outer courtyard of Divine Realm, but is unable to introduce and usher our souls into the Inner Mansions of God's Kingdom.

इसका हिन्दी में अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है —

''हमारा दिमागी ज्ञान हमें ज्यादा से ज्यादा आत्मिक मंडल के 'बाहरी आँगन' की 'टोह' या 'सीध' दे सकता है, उससे आगे नहीं !!'

जब तक हमारे मन पर अन्तर-आत्मा में **नाम का आत्म-प्रकाश नहीं होता —** तब तक हम मायिकी 'मिथ्या मोह-अग्नि-शोक-सागर' में ही जलते-भुनते-सड़ते रहेंगे तथा **'खुनक नाम खुदाइआ' की शीतलता अनुभव नहीं कर सकते ।**

जिस प्रकार पहले बताया जा चुका है कि

मायिकी मंडल

'आतिश दुनिया'

'कलि ताती'

अग्नि-कुण्ड

अग्नि-शोक-सागर

पावक-सागर

में से निकलने का, तथा —

'खुनक नामु खुदाइआ'

'ठांढा हरि नाउ'

बेगम-पुरा

नाम-प्रकाश

प्रेम स्वपैना के देश

ईश्वरीय मंडल

में प्रवेश करने का, सब से सरल तथा आवश्यक साधन, 'साध संगति' अथवा बरक्शे हुए गुरमुख प्यारों — महापुरुषों की 'संगत' ही बतायी गयी है ।

हमारे ख्यालों में शक्ति है । अभ्यास किये हुए ख्याल अत्यन्त शक्तिमान हो जाते हैं । इस लिए नाम अभ्यास कमाई वाले बरक्शे हुए गुरमुख प्यारों के ख्यालों, कल्पना, इच्छा, कामना तथा आशिर्वाद के पीछे बेअंत शक्ति होती है। उनके 'सामीप्य' या 'संगत' में अनेक आत्मिक किरणों (Spiritual rays)का प्रकाश होता है या 'पारस कला' की दामनिक शक्ति होती है, जो होनहार अभिलाषी जिज्ञासुओं

की रूह पर सहज-स्वभाव आत्मिक प्रभाव डालती है तथा इन दामनिक इलाही किरणों द्वारा जिज्ञासुओं के मन की मैल जल जाती है तथा उनका मन एकाग्र होकर शान्ति तथा शीतलता महसूस करता है।

ठांढि परी संतह संगि बसिआ ।।
अंम्रित नामु तहा जीअ रसिआ ।। (पृ. 256)

एकु बोलु भी खवतो नाही साधसंगति सीतलई ।। (पृ. 402)

गतु भरम मोह बिकार बिनसे जोनि आवण सभ रहे ।।
अगनि सागर भए सीतल साध अंचल गहि रहे ।। (पृ. 458)

नह सीतलं चंद्र देवह नह सीतलं बावन चंदनह ।।
नह सीतलं सीत रुतेण नानक सीतलं साध स्वजनह ।।
(पृ. 1357)

जिन्हा दिसंदड़िआ दुरमति वंञै मित्र असाडड़े सेई ।।
हउ ढूढेदी जगु सबाइआ जन नानक विरले केई ।। (पृ. 520)

इस प्रकार जिज्ञासुओं की अन्तर-आत्मा में सहज-स्वभाव, स्वतः अनहद-नाम-सिमरन की दैवीय कला का अजपा जाप शुरू हो जाता है।

महापुरुषों की आत्मिक शक्ति से परिपूर्ण —

दृष्टि
वचन
छुह
ख्याल
निश्चय

जीवन किरणें

जीवन रौं

के माध्यम से, अभिलाषी जिज्ञासु की 'रूह' को —

प्रेरणा

मार्गदर्शन

सहायता

बख्शिश

'जीवन-दान'

पारस 'छुह'

चुप-प्रीत

प्रदान होती है तथा **सहज स्वभाव जिज्ञासु का जीवन बदल जाता है** तथा आत्मिक मंडल की ओर 'खिंचता' जाता है।

इस प्रकार **आत्मिक मंडल की सतह पर —**

अभिलाषी जिज्ञासुओं तथा गुरमुख प्यारों

के

'मिलाप' अथवा 'संगत'

द्वारा, इन के बीच —

आत्म-प्यार

प्रेम-स्वैपना

प्रिम-रस

आत्म-रंग

शब्द

नाम

की दिव्य वस्तुओं का—

'आदान-प्रदान'

'व्यवहार'

'वाणिज्य'

'व्यापार'

'सांझ'

अथवा अन्तर-आत्मा के **'सौदे'** —

सहज-स्वभाव

अनजाने

चुप-चाप

अदृश्य

अन-सुने

बिना बोले

भोले भाव

गुप्त रूप में

ही होते रहते हैं।

गुरबाणी में इस विचार की यूं प्रौढ़ता की गयी है —

संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा ।।
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगति भरे भंडारा ।।
(पृ. 614)

सुखि बैसहु संत सजन परवारु ।।
हरि धनु खटिओ जा का नाहि सुमारु ।। (पृ. 185)

प्रेम भगति नानक सुखु पाइआ साधू संगि समाई ।। (पृ. 384)

नानक हरि जसु हरि गुण लाहा सतसंगति सचु फलु पाइआ ।।
(पृ. 1040)

गुरबाणी में साध संगति की **महत्ता यूं** बताई गई है —

संतसंगि हरि मनि वसै ।।
दुखु दरदु अनेरा भ्रमु नसै ।। (पृ. 211)

सतसंगति महि हरि उसतति है संगि साधू मिले पिआरिआ ।।
ओइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि उपदेसु करहि परउपकारिआ ।।
हरि नामु द्रिड़ावहि हरि नामु सुणावहि
हरि नामे जगु निसतारिआ ।। (पृ. 311)

जो हरि राते से जन परवाणु ।।
तिन की संगति परम निधानु ।। (पृ. 353)

पारसु भेटि कंचनु धातु होई सतसंगति की वडिआई ।।
(पृ. 505)

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता ।।
मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता ।। (पृ. 809)

भइओ क्रिपालु सतसंगि मिलाइआ ।।
बूझी तपति घरहि पिरु पाइआ ।। (पृ. 738)

ठांढि परी संतह संगि बसिआ ।।
अंम्रित नामु तहा जीअ रसिआ ।। (पृ. 256)

अगनि सागर भए सीतल साध अंचल गहि रहे ।। (पृ. 458)

संत संगि जा का मनु सीतलु ओहु जाणै सगली ठांढी ।।
(पृ. 610)

तभी गुरबाणी में 'साध संगत' के लिए हमें यूँ **याचना** करनी सिखायी है—

हरि जीउ आगै करी अरदासि ।।
साधू जन संगति होइ निवासु ।। (पृ. 415)

कहु नानक प्रभ बरवस करीजै ।।
करि किरपा मोहि साध संग दीजै ।। (पृ. 738)

करि किरपा मोहि मारगि पावहु ।।
साधसंगति कै अंचलि लावहु ।। (पृ. 801)

वडभागी हरि नामु धिआवहि हरि के भगत हरे ।।
तिन की संगति देहि प्रभ जाचउ मै मूड़ मुगध निसतरे ।।
(पृ. 975)

ऐसी मांगु गोबिद ते ।।
टहल संतन की संगु साधू का हरि नामां जपि परम गते ।।
(पृ. 1298)

(क्रमशः .....)